ॐ अर्हम्

# जवाहर-ज्योति

## ब्रह्मचर्य

### प्रार्थना

*कुंथु जिनराज ! तू ऐसो, नहीं कोई देव तो जैसो ।*
*त्रिलोकीनाथ तू कहिये, हमारी बांह दृढ़ गहिये ॥ कुं० ॥*

श्री कुन्थुनाथ भगवान् की यह प्रार्थना की गई है । परमात्मा की प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए इस सम्बन्ध में ज्ञानियों और भक्तों ने अपने हृदयगत भाव प्रकट करके जनता के समक्ष अनेक मार्ग प्रस्तुत किये हैं । फिर भी सर्वसाधारण जनता सरलता से प्रार्थना कर सके, इसके लिए कोई साधारण नियम होना

कि सूर्य की सहायता के बिना जीवन नहीं टिक सकता जीवन गति भी कठिन हो जाती है। अतएव सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता बतलाने वाला भूल करता है। सूर्य की जीवन में अनिवार्य उपयोगिता है। सूर्य अपनी निन्दा करने वाले को और अपनी प्रशंसा करने वाले को समान प्रकाश देता है वह किसी से भेदभाव नहीं रखता। सूर्य के विषय में जब यह कहा जा सकता है तब परमात्मा के विषय में ज्ञानी जन इस प्रकार कहते हैं —

*सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ।*

— भक्तामर स्तोत्र।

अर्थात्—हे प्रभो ! तुम्हारी महिमा अनन्त सूर्यों से भी अधिक है। इस प्रकार जब परमात्मा अनन्त सूर्यों से भी अधिक महिमाशाली है तो उसकी प्रार्थना के बिना क्या जीवन टिक सकता है ? कदाचित् तुम कहोगे—सूर्य प्रत्यक्ष में जीवनोपयोगी जान पड़ता है मगर ईश्वर तो कहीं दीखता भी नहीं, ऐसी हालत में ईश्वर का अस्तित्व और जीवन के लिए उसकी प्रार्थना की उपयोगिता कैसे मानी जा सकती है ?

इस प्रश्न के उत्तर में ज्ञानी जन बतलाते हैं कि यदि तुम्हारी चर्म-चक्षु ईश्वर का साक्षात्कार करने में समर्थ नहीं है तो इसमें क्या हुआ ? चर्मचक्षु के अतिरिक्त हृदय-चक्षु भी है और उनके द्वारा परोक्ष वस्तु जानी जा सकती है और उस वस्तु पर विश्वास भी किया जा सकता है। परमात्मा की प्रार्थना के विषय में ज्ञानी जन यही प्रतिपादन करते हैं कि तुम चर्म-चक्षुओं पर ही निर्भर न बनो, हमारी बात भी मानो। बचपन में जब तुमने बहुत-सी वस्तुएँ नहीं देखी होतीं तब भी माता के कथन पर तुम भरोसा करते हो। क्या इसमें तुम्हें कभी

अपूर्ण ब्रह्मचर्य की साधना के द्वारा पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुँचा जा सकता है।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के १६ वें अध्ययन की निर्युक्ति में ब्रह्मचर्य के चार भेद बताये गये हैं। नाम ब्रह्मचर्य, स्थापना ब्रह्मचर्य, द्रव्य ब्रह्मचर्य और भाव ब्रह्मचर्य।

जो लोग नाम से ब्रह्मचारी हैं पर ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, उनके ब्रह्मचारीपन को शास्त्र 'नाम ब्रह्मचर्य' कहते हैं। नाम के ब्रह्मचर्य से कुछ भी होता-जाता नहीं है। उसके साथ 'भाव ब्रह्मचर्य' का होना आवश्यक है। जो भाव से ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए भी नाम से ब्रह्मचारी कहलाते हैं वे दुनिया में सन्मान प्राप्त करने की कामना करते हैं। संसार में हीरा-मोती पहनने वालों का आदर होते देख कर कितने-क लोग सच्चे हीरा-मोतियों के अभाव में, आदर-सत्कार पाने के लिए नकली हीरा-मोती पहनते हैं। नकली हीरा-मोती पहनने का उनका उद्देश्य सिर्फ यही होता है कि नखरे करके किसी प्रकार लोगों को धोखा दिया जाय। इसी प्रकार संसार में ब्रह्मचारी का आदर-सन्मान होते देखकर उसी प्रकार का आदर-सन्मान पाने की लालसा से कुछ लोग नाम मात्र के ब्रह्मचारी बन बैठते हैं—वे ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते। ऐसे ब्रह्मचर्य को शास्त्रकार 'नाम ब्रह्मचर्य' कहते हैं। यह नाम ब्रह्मचर्य की बात हुई।

जो स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता किन्तु ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचारी की मूर्ति बनाकर और उससे काम चल जायगा—ऐसा सोचकर, मूर्ति की स्थापना करके उसे मानता है वह स्थापना

भीष्मकुमार की कथा

यह भीष्मकुमार की कथा है। पहले भीष्म का नाम गंगकुमार था। फिर इनका नाम देवव्रत हुआ और फिर भीष्म प्रतिज्ञा करने के कारण भीष्म नाम पड़ गया।

एक बार भारत के किसी ने कहा—आपने विवाह न करके बहुत बुरा किया है। इससे भारत को बहुत हानि पहुँची है। अगर आप विवाह करते तो आपकी सन्तान भी आपकी ही तरह पराक्रमी और वीरव्रत होती पर आपके विवाह न करने से भारत ऐसी सन्तान से वंचित रह गया। यही भारत की बड़ी हानि है।

भीष्मकुमार ने कहा—मैं विवाह करता तो मेरी सन्तान भी मेरी जैसी होती, यह नहीं कहा जा सकता। क्षीरसागर में विष भी हो सकता है। मगर मेरे ब्रह्मचर्य को आदर्श मानकर न मालूम कितने व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे और इस प्रकार अपना तथा जगत् का कल्याण करेंगे।

गंगकुमार का विचार पहले ब्रह्मचर्य पालने का नहीं था। किन्तु उन्होंने सोचा—जहाँ तक मैं आजीवन ब्रह्मचर्य न पालूँगा वहाँ तक पिता की इच्छा पूरी नहीं हो सकती। इस प्रकार अपने पिता की इच्छा की पूर्ति के लिए उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। इस कथा से यह भी विदित हो जायगा कि पिता का क्या धर्म है और पुत्र का क्या कर्त्तव्य है?

मत्स्यगन्धी उर्फ मत्स्यगंधा या योजनगंधा को देख कर राजा शान्तनु ने उसके साथ वार्तालाप किया और मन ही मन यह भी निश्चय कर लिया कि इस सर्वाङ्ग सुन्दर कन्या के साथ विवाह कर इसे

ालते हैं, उन्हें सुदास के कथन पर विचार करना चाहिए। एक ाधारण श्रेणि का आदमी-धीवर भी अपनी कन्या के अधिकार के संरक्षण के लिए कितने उन्नत विचार रखता है। उच्च श्रेणि और उच्च-कुलीन होने का दावा करने वालों को अपनी पुत्री के अधिकारों के संबंध में कितने उन्नतर विचार रखने चाहिए।

सुदास का यह कथन सुनकर गंगकुमार ने कहा—"तुमने ठीक कहा है। तुम्हें मेरे भावी पुत्र का भय है, पर यदि मैं विवाह ही नहीं करूँगा तो पुत्र कहाँ से आएगा? अतएव मैं देव, गुरु और धर्म की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन-पर्यन्त विवाह नहीं करूँगा। मैं जीवन भर ब्रह्मचारी रहूँगा।"

गंगकुमार ने विवाह करने का भी त्याग किया था, पर आज उससे ठीक विपरीत अवस्था दिखाई देती है। आज अनेक लोलुप विवाह करके भी नैमित्तिक सम्बन्ध जोड़ने से नहीं हिचकते। और यूरोप की तो लीला ही निराली है। वहाँ विवाह के बंधन को ही बुरा समझा जाता है। और कहा जाता है स्वेच्छा से बंधन में पड़ना भला-कौन सी बुद्धिमत्ता है। इस धारणा के कारण वहाँ स्वैर विहार का प्रचार हो रहा है। अनेक पुरुष और युवतियाँ वहाँ न विवाह करते हैं, न ब्रह्मचर्य ही पालते हैं। इससे दुराचार और तज्जन्य अनर्थ फैल रहे हैं। यह पतन का पथ है। पर तुम्हारे सामने तो भीष्म का भव्य आदर्श विद्यमान है। अतएव ब्रह्मचर्य की आराधना और साधना में ही अनेक महान् मंगल निहित हैं।

गंगकुमार की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुना, तो सुदास और सत्यवती स्तब्ध रह गये। गंगकुमार ने ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा की

# संतति-नियमन

समुद्रविजय-सुत श्रीनेमीश्वर, जादव कुल को टीको,
रतन कूख धरणी शिवादेवी, तेहनो नन्दन नीको।
श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे ॥१॥

श्री अरिष्टनेमि भगवान् की यह प्रार्थना की गई है। आज मुझे जिस विषय पर बोलने के लिए कहा गया है, वह विषय भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना मे ही प्रतिभासित हो रहा है।

ससार की दशा सुधारने के लिए महापुरुषो ने जो आचरण किया है और उन्होने जिस पथ पर प्रयाण किया है, उस पथ का अनुसरण करने के लिए वे समस्त ससार को आह्वान कर गये है। उन्होने कहा – ऐ जगत् के जीवो! समय की विचित्रता और विपरीतता के कारण कदाचित् तुम्हारे सामने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है जब तुम किंकर्तव्य-मूढ हो जाओ-तुम्हे यह न सूझ पडे कि ऐसी दशा मे क्या करे, क्या न करे? उस

निवारण करने के लिए ही भगवान ने बाल-ब्रह्मचारी रहने की घोषणा नहीं की थी।

## संतति-नियमन

भगवान् अरिष्टनेमि के समय में रसनेन्द्रिय की लोलुपता बढ़ रही थी, ऐसा उल्लेख मिलता है, किन्तु इस जमाने में जननेन्द्रिय की लोलुपता ने भयंकर रूप धारण किया है और इसके फल-स्वरूप सन्तानोत्पत्ति में वृद्धि हो रही है। सन्तानों की इस बढ़ती को देख कर कई लोग यह सोचने लगे हैं कि गरीब भारतवर्ष के लिए सन्तान-वृद्धि एक असह्य भार है। इस भार से भारत को बचाने के लिए उपाय खोज किया गया है कि सन्तान की उत्पत्ति के स्थान को ही नष्ट कर दिया जाय। 'न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।'

यह उपाय सन्तति-नियमन या सन्तति-निरोध कहलाता है। और इसी विषय पर मुझे अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा गया है। इस विषय का न तो मेरा अधिक अभ्यास है और न अध्ययन ही। पर समाचारपत्रों और कुछ पुस्तकों को पढ़ कर मैं यह जान पाया हूँ कि कुछ लोग बड़े जोर शोर से कहते हैं कि—बढ़ती जाती हुई सन्तान को अटकाने के लिए शस्त्र या औषध द्वारा स्त्रियों की जनन शक्ति का नाश कर दिया जाय, उनके गर्भाशय का ऑपरेशन कर डाला जाय, या फिर उनके गर्भाशय को इतना निर्बल बना दिया जाय कि सन्तान की पैदाइश हो ही न सके। इस उपाय द्वारा सन्तति-निरोध करने की आवश्यकता बतलाते हुए वे लोग कहते हैं —

प्रति द्रोह किया जा रहा है और उसकी उत्पत्ति का नाश किया जा रहा है उस दृष्टि पर यदि गहरा और दूरदर्शितापूर्ण विचार किया जाय तो, जान पड़ेगा कि यह दृष्टि धीरे-धीरे बढ़ती हुई कुछ-भी काम न कर सकने वाले—अतएव भार-स्वरूप समझ लिये जाने वाले–वृद्ध और अपाहिज पुरुषों के विनाश के लिए प्रेरित करेगी। इससे जिस प्रकार सन्तान के प्रति व्यवहार किया जा रहा है उसी प्रकार वृद्धों के प्रति भी निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न होगी। फिर स्त्रियां भी यह सोचने लगेगी कि मेरा पति अब अशक्त और अयोग्य हो गया है। वह मेरे लिए अब भार-स्वरूप है और मेरी स्वतत्रता मे बाधक है। ऐसी दशा मे क्यों न उसका विनाश कर डाला जाय। पुरुष भी इसी प्रकार स्त्रियों को अयोग्य एव असमर्थ समझ कर उनके विनाश का विचार करेगा। इस प्रकार शस्त्र या औषध का जो कृत्रिम उपाय, खर्च से बचने और सतति-नियमन के काम मे लाया जाता है, वही उपाय स्त्री और पुरुष के प्राणों का सहार करने के काम मे लाया जाने लगेगा। परिणाम यह होगा कि मानवीय सद्गुणों का नाश हो जायगा, समाज की शृंखला भग्न हो जायगी, हिंसा-राक्षसी की चंडाल-चौकडी मच जायगी और जो भयकर काल अभी दूर है वह एकदम नजदीक आ जायगा।

सतति-नियमन के भयकर और प्रलयकर उपाय से और भी अनेक अनर्थ उत्पन्न हो सकते है। इस उपाय के विषय मे स्त्रियाँ यह सोच सकती है कि सतान की बदौलत ही मेरे गर्भाशय का ऑपरेशन किया जाता है, अतएव ऑपरेशन की झंझट से बचने के लिए सतान उत्पन्न होते ही क्यो न उसका गला घोट दू ?

रोक दिया। कौन आत्मा तो पवित्र किया करने में भी पुण्य है आएगी।

कहा जा सकता है कि इस तरह की ज्ञान वाली संतान का निर्माण किस प्रकार करना चाहिए? संतान का नियमन न किया जाय तो पिछली की तरह संतान तबाह हो चले जावें? इस प्रश्न के उत्तर में सबसे पहले हम यह कहना चाहते हैं कि विषयवासना को सदा के लिए ही शांत क्यों न कर दिया जाय? काम-वासना में प्रवृत्ति ही क्यों की जाय और स्त्री-प्रसंग क्यों किया जाय? इस समस्या को हल करने के लिए भीष्म पितामह और भगवान अरिष्टनेमि का आदर्श सामने रखकर ब्रह्मचर्य का ही पालन क्यों न किया जाय? ब्रह्मचर्य का पालन यदि पूर्ण रूप से किया जाय तो संतति-नियमन की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होगी।

किसी ने भीष्म से कहा—आपने विवाह न करके संसार की बहुत हानि पहुंचाई है। आपने ब्याह किया होता तो आपकी संतान भी आपकी ही तरह बलवान होती और बलवान संतान से संसार का बड़ा उपकार होता।

भीष्म ने उत्तर दिया—बुद्धि भ्रष्ट होने से ही ऐसे प्रश्न उत्पन्न होते हैं। पहले तो यह कहना ही कठिन है कि विवाह करने से पुत्र होता ही। संसार में अनेक लोग विवाहित होने पर भी पुत्र-हीन देखे जाते हैं। कदाचित् पुत्र होता भी तो क्या प्रमाण है कि वह मेरे जैसा वीर होता या नहीं?

महात्मा ... आपका कथन निर्मूल नहीं है। आज भी अनेक ... हैं जिनसे जान पड़ता है कि

इसके लिए मैंने पहले आम का उदाहरण दिया है। उस पर विचार करो। जिस प्रकार आम का पेड़ बना रहे उसके फल भी आवश्यकतानुसार ही आवें और वे फल सब के लिए लाभ-दायक हों, इस बात के लिए जो उपाय पहले सोचा गया था वैसा ही कोई उपाय संतान के लिए भी हो सकता है या नहीं ? इस प्रश्न पर गहरा विचार करो। अगर ऐसा कोई उपाय संभव है तो क्यों न उसका ही प्रयोग किया जाय ? और क्यों औषधियों द्वारा गर्भाशय को नष्ट करने की विडम्बना की जाय ?

पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना संतति-निरोध का सर्वोत्तम उपाय है। यदि यह शक्य न हो तो जब तक स्त्री-पुरुष में अपनी संतान के पालन-पोषण की शक्ति न आवे तब तक ब्रह्म-चर्य का नियमित रूप से पालन करना चाहिए अथवा दो-चार संतान उत्पन्न हो जाने के पश्चात् संतोष धारण कर विषय-सेवन से निवृत्त हो ब्रह्मचर्य में प्रवृत्त होना चाहिए।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का आश्रय लेने से संतति-नियमन की समस्या सहज ही सुलझ जाती है। फिर उसके लिये हानिकारक उपायों का अवलम्बन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। संतति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य अमोघ उपाय है। पर विलासी लोग इसका उपयोग न करते हुए चाहते हैं कि न तो विषय-भोग का परित्याग करना पड़े और न संतान ही उत्पन्न होने पावे। और इस दुरभिसंधि की पूर्ति के लिए शस्त्र-प्रयोग आदि उपायोंसे जनन-शक्ति का ही नाश करने की तरकीबें खोजते हैं। पर स्मरण रखना, यदि ब्रह्मचर्य का पालन न करके कृत्रिम उपायों द्वारा संतति-नियमन किया जायगा तो इससे भविष्य में अपार और असीम

उत्तर देता, 'सिकन्दर का यही ... समझना कि अगर आप उपवास नहीं कर सकते तो आपके रोग की औषधि इस चिकित्सालय में नहीं है।' इसी प्रकार अगर तुम विषय-भोग की इच्छा को जीत नहीं सकते, तो ब्रह्मचर्य के सिवाय और क्या इलाज है? तुम ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करना चाहते और विषय-भोग की प्रवृत्ति जारी रखकर सन्तति का नियमन करना चाहते हो तो इसका अर्थ यही है कि तुम सन्तति-नियमन के सच्चे उपाय को काम में नहीं लाना चाहते, बल्कि विषय-वासना की पूर्ति में तुम्हें सन्तान बाधक जान पड़ती है, इसलिए उसका निरोध करना चाहते हो।

खेद है कि लोगों के मन में यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि विषय-भोग की इच्छा का दमन करना असम्भव है। परन्तु जैसे नैपोलियन ने असम्भव शब्द को कोश में से निकाल डालने को कहा था, इसी प्रकार तुम अपने हृदय में से काम-भोग की इच्छा का दमन करने की असम्भवता को निकाल बाहर करो। ऐसा करने से तुम्हारा मनोबल सुदृढ़ बनेगा और तब विषय-भोग की कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा।

## हनुमान की कथा

मर्यादित ब्रह्मचर्य का पालन करके उत्पन्न की हुई सन्तान कितनी बलिष्ठ होती है, इस बात को समझने के लिए हनुमान की कथा पर विचार करो। हनुमान हमें बल देंगे इस भावना से लोग उनकी पूजा करते हैं पर हनुमान की मूर्ति पर तेल या सिन्दूर पोत देने से ही क्या बल की प्राप्ति हो सकती है? हनुमान को जिस बल की प्राप्ति हुई थी वह ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से हुई थी।

एक बालक गन्ने का टुकड़ा लेकर चूस रहा है और दूसरा बालक शक्कर की डली चूस रहा है। दूसरे बालक ने पहले को शक्कर की डली दिखला कर कहा—देख कैसी मीठी है यह शक्कर! तब पहले बालक ने उत्तर दिया—यह शक्कर आई कहां से है? इसी गन्ने में से तो शक्कर निकली है। मेरे इस गन्ने में तो शक्कर ही शक्कर भरी है।

'गन्ने में शक्कर भरी है' ऐसा कहने वाला बालक क्या असत्य बोलता है? उसका कहना यदि सत्य है तो गन्ने में से परिश्रम करके शक्कर निकालने का प्रयत्न करना क्या वृथा है? नहीं, प्रयत्न भी वृथा नहीं है और गन्ने में शक्कर भरी है यह कहना भी असत्य नहीं है। क्योंकि गन्ने में शक्कर होती है तभी प्रयत्न करने से वह निकल सकती है। शक्कर में निरयालिस शुद्ध मिठास होती है, जब कि गन्ने में मिठास के साथ ही अन्य वस्तुएँ मिली रहती हैं। दोनों में इतना ही अन्तर है।

इसी प्रकार प्रार्थना कहीं बाहर से नहीं आती। जिस प्रकार गन्ने में शक्कर व्याप्त है उसी प्रकार आत्मा में परमात्मा की प्रार्थना व्याप्त है। यह बात दूसरी है कि जैसे गन्ने में व्याप्त शक्कर के साथ अन्य पदार्थ मिले रहते हैं, उसी प्रकार आत्मा में व्याप्त प्रार्थना भी अन्य वस्तुओं में मिली हो। मगर जैसे क्रिया द्वारा गन्ने में से शक्कर निकाली जा सकती है उसी प्रकार प्रयत्न द्वारा आत्मा में व्याप्त प्रार्थना भी बाहर निकाली जा सकती है। आत्मा में व्याप्त उस प्रार्थना को महात्मा पुरुषों ने कड़ियों के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। किन्तु प्रार्थना की वह कड़ियाँ भी आत्मा में से ही बाहर निकलती है।

एक बालक गन्ने का टुकड़ा लेकर चूस रहा है और दूसरा बालक शक्कर की डली चूस रहा है। दूसरे बालक ने पहले को शक्कर की डली दिखला कर कहा—देख कैसी मीठी है यह शक्कर! तब पहले बालक ने उत्तर दिया—यह शक्कर आई कहां से है? इसी गन्ने में से तो शक्कर निकली है। मेरे इस गन्ने में तो शक्कर ही शक्कर भरी है।

गन्ने में शक्कर भरी है ऐसा कहने वाला बालक क्या असत्य कहता है? उसका कहना यदि सत्य है, तो गन्ने में से परिश्रम करके शक्कर निकालने का प्रयत्न करना क्या वृथा है? नहीं, प्रयत्न भी वृथा नहीं है और गन्ने में शक्कर भरी है यह कहना भी असत्य नहीं है। क्योंकि गन्ने में शक्कर होती है तभी प्रयत्न करने से वह निकल सकती है। शक्कर में निखालिस शुद्ध मिठास होती है, जब कि गन्ने में मिठास के साथ ही अन्य वस्तुएँ मिली रहती हैं। दोनों में इतना ही अन्तर है।

इसी प्रकार प्रार्थना कहीं बाहर से नहीं आती। जिस प्रकार गन्ने में शक्कर व्याप्त है उसी प्रकार आत्मा में परमात्मा की प्रार्थना व्याप्त है। यह बात दूसरी है कि जैसे गन्ने में व्याप्त शक्कर के साथ अन्य पदार्थ मिले रहते हैं, उसी प्रकार आत्मा में व्याप्त प्रार्थना भी अन्य वस्तुओं में मिली हो। मगर जैसे क्रिया द्वारा गन्ने में से शक्कर निकाली जा सकती है उसी प्रकार प्रयत्न द्वारा आत्मा में व्याप्त प्रार्थना भी बाहर निकाली जा सकती है। आत्मा में व्याप्त इस प्रार्थना को महात्मा पुरुषों ने कड़ियों के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। किन्तु प्रार्थना की वह कड़ियाँ भी आत्मा में से ही बाहर निकलती हैं।

वेदान्त और उपनिषद् में मानव का सब महत्त्व बतलाया है। वहाँ मनुष्य का अग्नि के रूप में वर्णन किया गया है। जिस अन्न और पानी कहते हैं वह अन्न और पानी भी मनुष्य के पेट में पहुँच कर भस्म हो जाता है, इस कारण मनुष्य अग्नि कहा गया है। पेट में पहुँच कर अन्न-पानी किस प्रकार भस्म हो जाता है और रस भाग एवं खल-भाग किस प्रकार अलग-अलग हो जाता है, यह विषय बहुत लम्बा है। अतएव इस सम्बन्ध में इतना ही कहना चाहता हूँ कि मनुष्य के पेट में अन्न-पानी भी भस्म हो जाता है। इसी कारण वेदान्त और उपनिषद् में मनुष्य का अग्नि-रूप में वर्णन किया गया है। डाक्टर भी किसी भी मनुष्य की अग्नि की पहले परीक्षा करता है। मनुष्य एक जीवित और चलती-फिरती आग है। इस आग में जो कुछ भी होम किया जाता है वह बेकार नहीं जाता किन्तु आकृति के रूप में पलट जाता है। अन्न-पानी से वीर्य बनता है और वीर्य से बाद में उसी प्रकार की सन्तान उत्पन्न होती है। ऐसी यह परम्परा है। परन्तु इस परम्परा में, यह ध्यान रखना चाहिए कि अन्न जल जैसा होगा, वीर्य वैसा ही बनेगा और जैसा वीर्य होगा, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी। अतएव जो अपने धर्म, कर्म, अपनी परम्परा और अपनी भावी सन्तान का ध्यान रखता है वही मनुष्य कहलाता है।

इस कथन से एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस दृष्टि से तो विद्वान्-मूर्ख, बालक-वृद्ध, गँवार और नागरिक, सभी मनुष्य कहलाने लगेंगे। इस प्रश्न का समाधान करते हुए ज्ञानी-जन कहते हैं कि जिनमें मानव-धर्म पाया जाय उन्हें ही मानव

शास्त्र मे मेघकुमार के अध्ययन में कहा है कि मेघकुमार जकुमार था। उसने बचपन से ही सब क्रियाएँ सीख ली थी र भी जब वह कुछ बड़ा हुआ तो वह कलाचार्य के सुपुर्द र दिया गया था। वहाँ वह लेखन-शिक्षा से लगाकर शकुन-शास्त्र । शिक्षा तक–७२ कलाएँ सीखा था। इन ७२ कलाओं में नव-जीवन की आवश्यकता संबंधी समस्त बातों का समावेश जाता है। इस विषय का पूर्ण विवरण ज्ञान-सूत्र ( नाया म्मकहा ) मे दिया गया है। यहाँ उसके विस्तारपूर्वक वर्णन रने का अवकाश नहीं है। इस समय तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में सब को ७२ कलाएँ सूत्र से, अर्थ और कर्म से सिखाई जाती थी। आजकल हाई स्कूलों और कॉलेजों मे दी जाने वाली शिक्षा मे तथा प्राचीन काल में दी जाने वाली शिक्षा मे कितना अधिक अन्तर है? यह बात गहरे बैठ कर विचार करने से अपने-आप विदित हो जायगी। आजकल जो पुस्तकें पढ़ाई जाती है उनका सक्रिय शिक्षण नहीं दिया जाता और आधुनिक शिक्षा की दुर्दशा का यही कारण है। आज के विद्यार्थी से अमुक वस्तु कर दिखाने के लिए कहा जाता है तो तत्काल उत्तर मिलता है—'यह वस्तु कैसे बनती है, यह बात हमने पुस्तक मे पढ़ी है, बांची है, पर बनाने मे हम असमर्थ है।' इस प्रकार की निष्क्रिय शिक्षा से उदीयमान प्रजा को कितना और क्या लाभ पहुँच सकता है, यह एक विचारणीय बात है।

शास्त्र मे मेघकुमार की शिक्षा के विषय में यह बताया गया है कि उसने पहले सूत्र-रूप में शिक्षा ग्रहण की, फिर अर्थ-रूप में

सकता है ? भाव-धर्म के बिना क्या हमारा काम रुक जायगा ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस भाव-धर्म के लिए द्रव्य-धर्म किया जाता है उस भाव-धर्म को ही यदि भुला दिया जाय तो फिर द्रव्य उन्नति कैसे हो सकती है ? तुम जो कुछ भी करते हो वह किसके लिए करते हो ? आत्मा के लिए ही करते हो न ? तब यदि आत्मा को ही न जानो तो उसकी उन्नति किस प्रकार कर सकते हो ? और इस प्रकार जब तक आत्मा को न जानो, तब तक भाव धर्म की साधना भी किस प्रकार हो सकती है ?

यदि कोई कहे कि हम तो यह भी नहीं जानते कि आत्मा क्या चीज है ? तो इसका उत्तर यह है कि तुम जिस शरीर को प्रत्यक्ष देख रहे विचार करो कि शरीर कार्य है या कारण ? शरीर कार्य है और उसका कारण पंच-भूत है। जैसे घडी कार्य है और उसके सांचे उसके कारण है, इसी प्रकार शरीर कार्य है और पांच-भूत उसके कारण है। यहाँ तक समझने मे तो भूल नहीं होती, पर आगे चलने पर भूल हो जाती है। अब आगे यह समझिये कि शरीर जब कार्य है तो इसका कर्त्ता कौन है ? कितनेक लोग कहते है कि जैसे पुर्जे तरतीबवार जमा देने से घडी चालू हो जाती है, इसी प्रकार पांच भूतो के संयोग मात्र से यह शरीर भी बोलता चलता बन जाता है। जैसे घडी के पुर्जे बिखरने से घडी बन्द हो जाती है उसी प्रकार पाँच भूतो के बिखरने से यह शरीर भी बोलता चलता नहीं रहता। इसके लिए परलोक या आत्मा को मानने की क्या आवश्यकता है ?

कल-पुर्जों को यथास्थान जमा देने से घडी चालू हो जाती है, यह तो ठीक है, पर प्रश्न तो यह है कि पुर्जों को जमाया किसने

उदयपुर में एक वकील ने मुझ से प्रश्न किया था कि आत्मा जब अविनाशी है, वह किसी का मारा मरता नहीं है तो किसी को मारने से पाप कैसे लग सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा था—आत्मा अविनाशी है इसीलिए पाप लगता है और उसे पाप का फल भोगना पड़ता है। आत्मा अगर विनाशी होता तो कोई झगड़ा ही न रहता। मारने वाला और मरने वाला यदि नष्ट हो जाता तो पाप का प्रश्न ही कैसे उपस्थित होता? लोक-व्यवहार में भी जो मर जाता है उसके ऊपर किसी प्रकार का दावा नहीं हो सकता।

इसी प्रकार आत्मा यदि नाशशील होता तो किसी प्रकार का झगड़ा ही न रहता। मरे हुए पर दावा नहीं होता, पर जीवित पर तो होता है न? इसी तरह मारने वाला भी नष्ट नहीं हुआ और मरने वाला भी नष्ट नहीं हुआ है अतएव किसी को मारने से पाप भी लगता है और उस पाप को धोने के लिए धर्म की भी आवश्यकता रहती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो सब प्राणियों को आत्म-तुल्य मानेगा वह किसी के साथ वैर नहीं बांधेगा और इसलिये वह पाप का भी बंध नहीं करेगा। यह सामान्य मानव-धर्म है। श्री स्थानांग सूत्र में ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, राष्ट्र-धर्म, आदि दस धर्मों का वर्णन किया गया है। मैंने इन दस धर्मों पर व्याख्यान किया है, जो पुस्तक रूप में प्रकाशित भी हुआ है।* मुझे मालूम हुआ है कि यह पुस्तक लोगों को अत्यन्त उपयोगी साबित हुई है। इसी प्रकार

*देखो 'धर्म अने धर्मनायक', प्रसिद्धकर्ता—शान्तिलाल वनमाली शेठ।

ेये उसने तुम्हारा पालन-पोषण किया है और इसी कारण म्हारा जीवन टिक सका है। इतना होते हुए भी तुम कहते हो क मानव-धर्म की क्या आवश्यकता है! जीवन में वस्त्र और ोजन की जितनी आवश्यकता है उससे कहीं अधिक आव-यकता मानव-धर्म की है।

तुम्हारा ब्याह हुआ होगा। तुम कैसी स्त्री चाहते हो? अपने नुकूल वर्त्ताव करने वाली स्त्री तुम सभी चाहते हो या प्रतिकूल लने वाली? अनुकूल चलने वाली स्त्री सभी चाहते है, पर त्री यदि सामान्य-धर्म का पालन न करे तो क्या अनुकूल रह कती है? साधारण धर्म का पालन करने के लिये ही पिता ंतान का पालन करता है। धर्म की सहायता के बिना ससार क श्वास भी नहीं ले सकता। धर्म का अर्थ है नियम। नियम-वेरुद्ध एक श्वास भी न लेना यह मानव-धर्म है। तुम दूसरो में नियम देखना चाहते हो, पर यदि तुम स्वय भी नियम का पालन करो तो कितना अधिक लाभ हो सकता है।

यह तो धर्म के विषय में एक सामान्य बात कही गई है। ार अब धर्म का एक सूक्ष्म तत्व आपके सामने रखता हूँ। कोई यह कह सकता है कि आप जो कुछ कह रहे है, वह तो नीति है, धर्म नहीं। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि नीति, धर्म का ही एक अग है। नीति का आधार लेकर उस पर धर्म का महल किस प्रकार खडा करना चाहिए, इस बात का विचार करो। नीति किस प्रकार धर्म का पोषण करती है, यह बताने के लिए हितो-पदेश की एक कथा कहता हूँ, जिससे यह बात जल्दी और सरलता से समझ मे आजाए।

अतएव [illegible] मार्गपर प्राप्त करेगा।

इसी [illegible] समय इस [illegible] जीवन-साधना की कसौटी [illegible] —[illegible] का स्वागत करते हैं और उनके [illegible] समझता है—यदि इस [illegible] की परीक्षा में [illegible] मे परमात्मा की भक्ति का [illegible] प्राप्त [illegible] ।

मघा की [illegible] जनता को अत्यन्त लाभ पहुँचा था। न तो उनकी [illegible] हानि हुई थी और न प्रजा की ही। मघा के [illegible] न वेश्यागमन, मदिरापान, चोरी आदि पाप-प्रसंगों का परित्याग कर दिया था। उस समय होटल नहीं थे, अतएव होटलों के संबंध में उसे कुछ कहना ही न था। हाँ, मघा जैसा कोई सुधारक आज हो तो वह होटल का व्यसन जरूर छुड़ा देता। आज होटलो के कारण कैसी-कैसी पाप-प्रवृत्तियाँ बढ़ गई हैं और लोग इन पाप-प्रवृत्तियों में पड़ कर किस प्रकार पतन की ओर प्रयाण कर रहे हैं, यह सब के सामने है। जिस जाति मे या जिस घर मे मास-मदिरा का सेवन तो दूर रहा उनका नाम तक लेना पाप माना जाता है, उन्हीं लोगो की सन्तान होटलो मे जाना सीख लेती है और धीरे-धीरे मास-मदिरा के खान-पान की पापमय प्रवृत्ति मे पड जाती है, ऐसा सुना जाता है। जो लोग मास का स्वाद चखने के लिए अथवा दूसरों का मास खाकर हृष्ट-पुष्ट बनने की आशा से मास का सेवन करते है, उन्हे यह भूल न जाना चाहिए कि

उन्होंने एक मंडल बनाया और मघा को दूर करने के उपाय सोचे। अन्त में राजा को मामला निवेदित करना। पर उसका और उसके शिष्यों का, अपराध भी तो होना चाहिए? राजा से निर्वासन के लिए कहा जायगा तो वह कहेंगे—'मघा साधु पुरुष है, उसे गाँव बाहर क्यों निकाला जाय?' तब राजा के सामने यह कहना ठीक होगा—'मघा और उसके सब चेले उचक्के और लुच्चे हैं और उनके कारण प्रजा को अत्यन्त त्रास हो रहा है। उनके भय के आगे राजरक्षा भी मात मारती है।' यह सुन कर राजा मघा के ऊपर कुपित होंगे और हमारी योजना सफल हो जायगी, क्योंकि राजा हमारे ऊपर विश्वास करते हैं।

इस प्रकार निश्चय करके, राज-कर्मचारियों ने अपना संगठन और सुदृढ़ करने का निश्चय किया। संगठन-शक्ति अच्छे कार्य के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है और किसी अच्छे कार्य में रोड़ा अटकाने के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है, क्योंकि शक्ति वह दुधारी तलवार है जिससे रक्षण और भक्षण दोनों काम लिये जा सकते हैं। राजकर्मचारियों के स्थापित किये हुए मंडल में पाप-प्रवृत्तियों द्वारा धन उपार्जन करने वाले कुछ लोग और शामिल हो गये। सब ने मिलकर मघा और उसके शिष्यों के विरुद्ध एक आवेदन-पत्र तैयार किया और राजा के पास ले गये।

मगध-नरेश को सूचना दी गई कि अमुक-अमुक राजकर्मचारी आपसे मिलने के लिये आये हैं। पर उस समय राजा स्वयं मदिरा के नशे में चूर हो रहा था। जब नशा कम हुआ तो

[illegible] इत्यादि [illegible]।

[illegible] सैनिकों [illegible] बनते हुए राजकर्मचारी [illegible] लौटे।

रास्ते में कर्मचारियों ने [illegible] को सचेत कर दिया था कि—देखिए, हमारे किसी भी कर्मचारी की आप बात सुनें, और न किसी से कुछ पूछने के लिए रुकें। अगर आप ऐसा न करेंगे तो बदमाशों को पकड़ना असम्भव हो जायगा। हम जिसकी ओर संकेत करें, बस उसी को गिरफ्तार कर लीजिए। अगर हम प्रगट रूप से उन बदमाशों के नाम आपको बताएँगे तो हमारी जान की खैर नहीं। ये बदमाश बहुत चालाक हैं। इन्होंने गाँव वालों को भी विद्रोही बना दिया है। राजकर्मचारियों की उन्हें रत्तीभर परवाह नहीं है। अतएव किसी के कहने पर कान न देकर जिसकी ओर इशारा किया जाय, उसी को आप गिरफ्तार करते जाइए।' इस प्रकार सैनिकों को पहले से ही बहका दिया गया। यों सैनिक स्वयं कितने उद्धत होते हैं यह किसी से छिपा हुआ नहीं है।

सैनिक कहने लगे—हमें महाराज ने आपके आदेश का पालन करने की आज्ञा दी है। अतएव जो आपकी आज्ञा होगी, वह हमें स्वीकार है। हम दूसरों की न सुनेंगे और न मानेंगे। जिस किसी को आप गिरफ्तार करने की आपकी आज्ञा होगी, उसे, फौरन बिना विलम्ब गिरफ्तार किया जायगा।

राजकर्मचारियों ने संतोष की साँस ली।

[illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] — [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हे गिरफ्तार कर लाने का [illegible]

सेना-नायक की बात [illegible] और [illegible] सिपाहियों ने अपने-अपने हाथ [illegible] । [illegible] हथकड़ी पहनाई। इसके बाद बेड़ी पहनने को कहा गया तो सब ने पैर आगे कर दिये। उनके पैर बेड़ियों से जकड़ दिये गये। हथकड़ियों और बेड़ियों पहना कर सैनिक ऐसे प्रसन्न हुए मानो बड़ा जग जीत लिया हो। इधर मघा और उसके शिष्य सत्य के आभूषण पाकर प्रसन्न हुए। चोरी, अत्याचार या अन्याय करके हथकड़ी-बेड़ी पहनना बुरी बात है, पर चोरी, अत्याचार या अन्याय का प्रतिकार करने के उपलक्ष्य में हथकड़ी-बेड़ी पहननी पड़े तो सच्चे सेवक को इन्हें 'सेवा के आभूषण' समझकर प्रसन्न होना चाहिये। हथकड़ी-बेड़ी ही सच्चे सेवक के श्रेष्ठ आभूषण है।

सैनिकों ने जब मघा और उसके शिष्यों को गिरफ्तार करके हथकड़ी-बेड़ी पहनाई, तब तक गांव-भर के लोग जमा हो गये थे। वे सब मघा की ओर एक इशारे की प्रतीक्षा करते हुए देख रहे थे। मघा एक इशारा करे, और सारी फौज को मार के मारे भागने की जगह न मिले! सेना कदाचित् हमें मारने दौड़ेगी तो भी कितनों को मारेगी? मघा ने जनता के भाव समझ लिये।

# जन-सेवा

## ( ४ )

### प्रार्थना

श्री मुनिसुव्रत साहिबा, दीनदयाल देवा तणा देव के ।
तरण तारण प्रभू मो भणी, उज्ज्वल चित समरू नित्यमेव के ॥
श्री मुनिसुव्रत साहिबा ।

श्री मुनिसुव्रत भगवान की यह प्रार्थना है । परमात्मा की प्रार्थना करने का सार है अपनी लघुता का भान हो जाना । परमात्मा की प्रार्थना करने के लिए अपने बड़प्पन को, अपने अभिमान को, और अपने अहंकार को छोड़ देना चाहिए । ऐसा करने पर ही प्रार्थना करने की योग्यता प्रगट होती है ।

[illegible] भी [illegible]

तुम लोग भी [illegible] । इसके [illegible] नहीं [illegible] के लिए करना चाहिए [illegible] वह [illegible] के प्रति भी नहीं करना चाहिए । तुम [illegible] निश्चय करो [illegible] कठोरता से पालन करना । जिन व्रतों या प्रत्याख्यानों को ग्रहण करो उन्हें आत्मसाक्षी से बराबर पालना । ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा ।

अन्त में, मैं अपनी भूलों के लिए तुम सब से क्षमा-याचना करता हूँ । मेरी हार्दिक भावना है कि तुम सब का कल्याण हो और तुम मेरे शरीर से नहीं, वरन् मेरे सद् विचारों से प्रेम करो ।

# महात्माजी का मिलन

मैं तुम्हें एक बात [illegible] यद्यपि देर से याद आई है फिर भी इतने लोगों के [illegible] में कहता हूँ।

गांधीजी कल सवेरे आये और सन्ध्या को लौट गये। उन्हें देखने के लिए हजारों आदमी गये होंगे। पर जो लोग गये थे उनसे मैं यह पूछना चाहता हूँ कि उन्होंने गांधीजी में क्या देखा? उनका स्थूल शरीर देखा या उनका कार्य?

गांधीजी इस समय के युगपुरुष या महापुरुष गिने जाते हैं। तो क्या स्थूल शरीर की बदौलत या कार्य की बदौलत?

कल गांधीजी यहाँ मेरे पास भी आये थे। मैंने उनकी सादगी देखी। एक छोटा-सा पंचा पहना हुआ था और एक छोटा-सा कपड़े का टुकड़ा शरीर पर ओढ़ा हुआ था! उनकी यह कितनी सादगी! इस सादगी के कारण लोग उन्हें देखने जाते हैं और बुरी तरह घेर लेते हैं। वह कहते थे—मैं आपके व्याख्यान में नहीं आ सका, क्योंकि लोग मुझे आराम से बैठने ही

मैंने [illegible]

[illegible] ऐसे मोह में [illegible] गए हैं कि अपने [illegible]। दूसरों की अपेक्षा हीरों पर अधिक [illegible] है [illegible] लोगों को विचारना चाहिए कि—'अगर हम खादी [illegible] तो खादी में खर्च हुआ पैसा गरीबों को मिलेगा और [illegible] उनका पेट भरेगा। [illegible] पहनने से थोड़े-से [illegible] करोड़पति हो जाएँगे, [illegible] होकर मोटर खरीदेंगे और ऐसा कार्य करेंगे जिनसे [illegible] होती है। हमारे [illegible] में दो-चार [illegible] के बसने के समान [illegible] वर्ग की प्रजा में दो-चार करोड़पतियों का बनना होगा। हमारे [illegible] में रहने वाले दो-चार [illegible] की क्या शोभा है? [illegible] तो तब है जब हमारे हीरों के बीच [illegible] हो। [illegible] के समूह में रहना बहादुरी नहीं है। [illegible] ही [illegible] को भी इससे कुछ लाभ नहीं है। [illegible] नहीं [illegible] हमारे [illegible] के बीच रहने वाला [illegible] प्रतिदिन दो-चार [illegible] का शिकार करेगा। इस प्रकार करोड़ों

# गांधी जयन्ती

## प्रार्थना

श्री सुबुद्धि [illegible] रे [illegible] रे ।
त्यागी [illegible] भवन [illegible] ।
निज आतम अनुभव [illegible] पद [illegible] ॥श्री०॥

भगवान् सुबुद्धिनाथ [illegible] । इस प्रार्थना मे यह बताया गया है कि [illegible] भगवान सुबुद्धिनाथ किस प्रकार बने । भगवान सुबुद्धिनाथ [illegible] परमात्मपद पाने में जो विघ्न या अंतराय बाधक [illegible] पर उन्होंने विजय-लाभ किया था । इस विजय के [illegible] में भगवान् सुबुद्धिनाथ का आत्म-धर्म प्रगट हुआ था । प्रार्थना मे कही हुई बात को सुनकर यह विचार उत्पन्न होता है कि—हे प्रभो ! आपके और मेरे बीच जरा-सा [illegible] — थोड़ी-सी दूरी है । आपने अपने विघ्नों को हटा दिया और मैं उन्हें अबतक हटा नहीं सका हूँ । बस यही मुझमे और आप मे फासला है—यही पर्दा है । इसी पर्दे के कारण मैं आपसे दूर पड़ा हूँ ।

[illegible]

[illegible] जाता है कि [illegible] और [illegible] का प्रकाश [illegible] — इसके [illegible] में यह कहा जा सकता है कि उस आकाश से बरसने वाला पानी समान होता है लेकिन भिन्न-भिन्न पात्र उसे [illegible] में ग्रहण करते हैं, इसी प्रकार भगवान सुबुद्धिनाथ वचन-मन्त्र से अमृत समान बुद्धि देते हैं, फिर भी विभिन्न व्यक्तियों के औपाधिक संबंध के कारण उसमें विचित्रता हो रही है। इसी वैचित्र्य को विनष्ट करने के लिए भगवान् सुबुद्धिनाथ के शरण मे जाने की आवश्यकता है। बुद्धि मे विचित्रता किस प्रकार आ रही है, इसके लिए एक प्रमाण लीजिए —

'परस्परविवदमानाना धर्मशास्त्राणामहिंसा परमो धर्म इत्यत्र एकवाक्यता ।'

अर्थात् धर्म-शास्त्रो मे अन्यान्य बातो सबधी मतभेद भले ही हो, पर अहिंसा को परम धर्म मानने मे किसी का मतभेद नहीं है। अहिंसा धर्म सभी को मान्य है। ऐसा होते हुए भी धर्म के नाम पर कितनी खून-खराबी हुई है? जहाँ धर्म के नाम पर इतनी खून-खराबी हो, वहाँ यही समझना चाहिए कि धर्म के नाम पर

[illegible] फिर भी [illegible] और री। [illegible] होना चाहिए और [illegible] होना चाहिए। मगर गांधीजी [illegible] साक्षात् खण्डन हैं। शरीर से दुबले-पतले होने पर भी उनमें तीन बातें ऐसी हैं, जिनके कारण उनकी महत्ता है। पहली बात उनमें निर्भयता है। मैं कविसम्राट कहलाता हूं। पर कोई छुरा लेकर मुझे मारने आवे तो अपने बचाव के लिए मैं प्रयत्न करूँगा और भाग जाऊंगा। मेरा हृदय भय से कांप उठेगा। मगर गांधीजी को मारने के लिए अगर कोई छुरा लेकर जायगा तो उसे देखकर वे जरा मात्र भी भयभीत न होंगे। यही नहीं, वरन् हंसेंगे, मुस्कराएंगे और पहले से भी अधिक प्रसन्न होंगे। उनकी दूसरी महत्ता है—सत्य के प्रति दृढ़ता। अगर सम्पूर्ण अमेरिका का विपुल वैभव उनके चरणों पर चढ़ा दिया जाय और बदले में सत्य का परित्याग कर असत्य आचरण करने के लिए कहा जाय तो वे उस वैभव को लात मार देंगे। वे सत्य का त्याग नहीं करेंगे।

गांधीजी अमेरिका की अतुल धनराशि को सत्य के लिए ठुकरा सकते हैं पर आप लोगों में कोई ऐसा तो नहीं है जो आठ आने के लिए साठ बार असत्य का आचरण कर सकता हो? अगर कोई ऐसा है तो उसे अपने इस पतन के लिए पश्चात्ताप नहीं होना चाहिए? पश्चात्ताप की ज्वाला में उसे अपने पापों को

गांधीजी की क्षमा के विषय में एक बात सुनी जाती है। दक्षिण अफ्रिका में गांधीजी ने सत्याग्रह संग्राम छेड़ा था। उस समय एक पठान को न मालूम क्यों यह सन्देह हो गया कि उन्हों ने हमें तो सत्याग्रह में झोंक रक्खा है और आप स्वयं सरकार से मिल गये हैं। पठान इस सन्देह के कारण गांधीजी पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उन्हें मार डालने तक के लिए साहस कर बैठा।

एक दिन पठान को गांधीजी मिल गये। पठान मौका देख ही रहा था, उसने उन्हें उठाकर सड़क में पटक दिया। गांधीजी चोट खाकर बेहोश हो गये। उनके मित्रों ने पता लगाकर उन्हें अस्प-

परमात्मा [illegible] मानते हैं कि परमात्मा [illegible] सर्व-व्यापक [illegible] सब का है। पुरातन [illegible] आधार पर परमात्मा सब का [illegible] ही है।

जिन्होंने ज्ञान का मर्म नहीं पाया है और जिनका अन्तःकरण राग-द्वेष से मलिन है उनमें अहंकार और ममत्व की प्रबलता होती है। वह अहंकार या ममकार भौतिक वस्तुओं तक सीमित नहीं रहता। जब उसकी अत्यधिक प्रबलता होती है तब परमात्मा जैसी सार्वजनिक वस्तु भी अहंकार की परिधि में आ जाती है और लोग अभिमान के साथ कहते हैं—परमात्मा हमारा है, वह किसी और का नहीं है। पर किसी का कोई भी प्रयत्न जैसे आकाश को सार्वजनिक होने से नहीं रोक सकता, इसी प्रकार वह ईश्वर को भी साम्प्रदायिकता के तंग दायरे में बंद नहीं कर सकता। अतएव हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि परमात्मा सब का है अर्थात् उसकी भक्ति से सब अपना कल्याण कर सकते हैं। परमात्मा के विषय में भेदभाव को कोई स्थान नहीं है।

प्राचीन काल के महात्माओं की कृतियों में, यदि उन्हें बारीक दृष्टि से देखा जाय तो, स्पष्ट प्रतीत होगा कि वे इस बात का पूर्ण ध्यान रखते थे कि धर्म क्लेश कलह का कारण न हो

'हर' शब्द की भी ऐसी ही व्युत्पत्ति है। अर्थात् जो पापों का हरण, विनाश करता है वह हरि या हर कहलाता है। शिव जिसे कहते हैं, इस संबंध में कहा गया है—'सत्यं शिवं सुन्दरम्' अर्थात् जो सत्य है शिव यानी कल्याणमय है और सुन्दर है, वह हर या शिव है। [illegible] हरि से पाप हरण करने की प्रार्थना की गई है और पापों को हरने में हरि और हर समान अर्थ रखते हैं। फिर इन दोनों के अर्थ में—जिसके ये दो नाम हैं उस परमात्मा में अंतर क्या है?—जिससे नाम की आड़ लेकर सिर-फुटौव्वल किया जाय? बौद्ध लोग भले ही परमात्मा को 'बुद्ध' नाम देकर उसकी प्रार्थना करते हैं, पर वस्तु तो वही है। उनकी प्रार्थना भी पाप का नाश करने के लिए ही है। फिर हरि, हर या बुद्ध में भेद क्या रहा? मीमांसक इस परमतत्त्व को कर्म-रूप मानते हैं। पर वे कर्म, पापनाश

इन श्लोकों में परमात्मा की प्रार्थना ब्रह्मा, विष्णु, शिव और पुरुषोत्तम आदि नामों से की गई है। यहां इन सब में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रक्खा गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

*यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।*
*वीतदोषकलुषः स चेद्भवान्, एक एव भगवन्! नमोऽस्तु ते॥*

अर्थात्—चाहे जिस सम्प्रदाय में, चाहे जिस रूप में, चाहे जिस नाम से, आप चाहे जो हों, समस्त दोषों से रहित आप एक ही हैं। ऐसे हे एक-रूप भगवन्! आपको नमस्कार हो।

इस श्लोक में स्पष्ट रूप से परमात्मा के विभिन्न नामों में एकता का प्रतिपादन किया गया है। वास्तव में प्रार्थना करने से पहले हमें प्रार्थना के उद्देश्य का निश्चय कर लेना चाहिए। हम पाप बढ़ाने के लिए प्रार्थना करते हैं या पाप नष्ट करने के लिए? यदि प्रार्थना का उद्देश्य पाप नष्ट करना है तो परस्पर की भिन्नता और द्वेष-भावना से पाप नष्ट नहीं होते। पाप नष्ट करने का उपाय क्या है, यह मैं आपको बतलाना चाहता हूँ। आप ध्यान लगा कर सुनें और उदारता के साथ उस पर विचार करें।

सूर्य निकलने पर भी जो लोग सुप्त पड़े रहते हैं जिनमें जागृति का कोई चिन्ह नज़र नहीं आता, उनके लिए जिस प्रकार सूर्य का निकलना और न निकलना बराबर है उसी प्रकार सूर्य से भी अधिक तेजस्वी महापुरुष का जन्म-दिन होने पर भी जो सुप्त और निरुत्साह बना हुआ है उसके लिए महापुरुष का जन्म होना निरर्थक है।

आप यह कह सकते हैं कि हम अत्यन्त उल्लास के साथ आज कृष्ण का जन्म-दिवस मनाएँगे। फिर हमारे लिए कृष्ण-जन्म निरर्थक क्या है? मगर मैं पूछता हूँ—जन्म-दिन मनाने का आपका तरीका क्या है? अच्छा खाना-पीना और पहनना-

[illegible] ... अपनी [illegible] ... समझने लगा कि जगत में [illegible] ... संसार में और कोई नहीं है।

जैन शास्त्र कहता है—कंस का अन्याय देख कर उसके भाई अतिमुक्त ने यह निश्चय किया—'जो अपने पूजनीय पिता को कैद करके आप राजा बना है और प्रजा पर घोर से घोर अत्याचार कर रहा है उसके आश्रय में रहना और उसके अन्याय के विष से विषैले टुकड़े खाना आत्मा का हनन करना है। जंगल में रहना और निरवद्य एवं नीरस आहार पर निर्वाह करना बेहतर और श्रेयस्कर है। कंस के पास रह कर अन्याय का प्रसाद लेना मेरे लिए उचित नहीं है।' ऐसा विचार कर अतिमुक्त ने दीक्षा धारण की और वे मुनि बन गये। एक बार अतिमुक्त मुनि भिक्षा के लिए या कंस की राजचर्या जानने के लिए कंस के महल में गये। वहां कंस की रानी जीवयशा मदान्ध होकर मुनि का उपहास करने लगी। उपहास के साथ वह मुनि के प्रति कटुक शब्दों का भी प्रयोग करने लगी। वह बोली—'वाह वाह! यह देखो राजघराने में पैदा हुए हैं! कुल को कलंक लगाते हुए इन्हें लाज नहीं आती! हाथ से कमाकर नहीं खाया

[illegible]

[illegible] सोचने लगी—[illegible] वहीं से [illegible] उसके सामने [illegible] हो गये। [illegible] अपना मुँह [illegible] नहीं [illegible] में [illegible] कंस भी [illegible] समीप इसी [illegible] में [illegible] उदास देख कर [illegible] ने कहा—'प्रिये! [illegible] का कारण क्या है? [illegible] प्रफुल्लित रहने वाले तुम्हारे [illegible] उदासीनता क्यों झलक [illegible] है? जब तुम उदासीन रहोगी तो संसार में प्रसन्नता किसके [illegible] से आएगी? बताओ, उदासी का क्या कारण है?

जीवयशा ने कहा—आज मेरी उदासीनता का गहरा कारण है। वह कारण इतना भयंकर है कि मुहँ से कहते भी नहीं बनता।

कंस—आखिर कहे बिना कैसे चलेगा। उसका प्रतिकार करना होगा। बिना कहे कैसे प्रतिकार होगा?

जीवयशा—आज आपके भाई अतिमुक्त अनगार यहाँ आये थे। मैंने उनका उपहास किया और कुछ कठोर वचन भी मुँह से निकल गये। उन मुनि ने मुझे कुछ शिक्षा देने के साथ अत्यन्त अनिष्टसूचक भविष्यवाणी की है। उसका स्मरण आते ही कलेजा मुँह को आता है। उन्होंने कहा है—'देवकी का पुत्र तेरे पति का नाश करेगा।' यह सुनकर मेरी चिन्ता का पार नहीं है।

जीवयशा का कथन सुनकर कंस ने अट्टहास किया, मानो होनहार को अपने अट्टहास्य से डरा देना चाहता हो। उसने जीवयशा से कहा—'बस, इसी बात से इतनी चिन्ता हो गई।

[illegible] ... जिस सत्य की [illegible] ... पिता के पुत्र में [illegible] ... [illegible] न हो सके, [illegible] पिता के [illegible] प्रेम होता है और अधिक प्रेम-परायण [illegible] तब तुम्हें क्या आपत्ति हो सकती है? [illegible] पापक कार्य में किसी प्रकार का [illegible] उचित भी नहीं है।

जिस सत्य की रक्षा के लिए वसुदेव ने अपने सुकुमार और प्यारे बच्चे काल के गाल में सौंप दिये, उस महान् सत्य का आप भी अपनाइए और 'सत्यं भगवान्' इस शास्त्रवाक्य पर पूर्ण श्रद्धा रखिए। स्मरण रखिए, बुद्धि एक प्रकार की वंचना है। उसकी दौड़ बहुत होती है। सत्य इतना महान् और उच्च है कि वह बुद्धि की परिधि में नहीं समा सकता। पत्थर तोलने की तराजू पर कदाचित् सुई तुल सकती है, पर बुद्धि की तराजू पर सत्य नहीं तुल सकता। बुद्धि से तर्क-वितर्क उत्पन्न होता है और तर्क-वितर्क सत्य की परछाई भी नहीं पा सकता। प्रगाढ़ श्रद्धा के कंटकाकीर्ण पथ पर चलते-चलते से सत्य के सन्निकट पहुँचना पड़ता है। अतएव श्रद्धा को बुद्धि के वश न पड़ने दो। विचार करो—सत्य की आराधना के लिए वसुदेव और देवकी ने अपने प्यारे पुत्र भी अर्पण कर दिये, तो सत्य का अनुसरण करने के लिए हम क्या नहीं त्याग सकते? अगर संसार में [illegible]

[illegible] है। इसलिये [illegible] इति-हास के लिये [illegible] नहीं [illegible] पर प्राचीन [illegible] में [illegible] गया गौ माता कहलाती थी और [illegible] सुनाई नहीं थी—अर्थात् गाय [illegible] जाती थी। मगर आज [illegible] कोई माता भले ही कह दे पर उसका [illegible] नहीं समझा जाता। लोग गोवंश के [illegible] मुसलमानों के मत्थे मँढते हैं पर मेरी समझ में [illegible] गाय को माँ समझ कर घर में आदर के [illegible] न होता और न कोई [illegible] हिन्दुओं ने गाय की रक्षा नहीं की [illegible] यही नहीं मैं तो यहाँ तक [illegible] किसी न किसी रूप में गोवंश के विनाश में [illegible] है। उदाहरण के लिये वस्त्रों को लीजिए [illegible] गाय की चर्बी वाले वस्त्र बड़े शौक से पहने जाते हैं। [illegible] की हत्या किये बिना चर्बी निकाली जाती है? चर्बी के लिए बड़ी क्रूरता से गायों का हनन किया जाता है और [illegible] चर्बी वाले वस्त्रों को पहन कर लोग कहते हैं—हम गो-भक्त —गाय हमारी माता है! धन्य है ऐसे मातृ-भक्त सपूतों को!

# सहायदाताओं की नामावली

५१) श्रीमान सोभागमलजी सा० लोटा, बगड़ी-सज्जनपुर की ओर से, उनकी स्व० पत्नी केशर बाई की पुण्य स्मृति मे।

५१) श्रीमान् धीरजमलजी रेखचन्दजी सा० राका की ओर से, उनके स्व० पिता श्री मगनमलजी सा० की पुण्य स्मृति में।

५१) श्रीमान् सुखराजजी पारसमलजी सा० कूमट की ओर से, श्री सुखराजजी की माहेश्वरी श्री चन्दा बाई की पुण्य स्मृति में।

५१) श्रीमान् कुन्दनमलजी सा० घोरीदासजी निर्मलजी सा० कान्हो की ओर से, श्री कुन्दनमलजी सा० की धर्मपत्नी की पुण्य स्मृति मे।

५१) श्रीमान् केशरीमलजी सा० मरलेचा की ओर से, उनके स्व० पिता श्री सुखराजजी सा० की पुण्य स्मृति मे.

मिलने का पता:—
हेडमास्टर महावीर जैन मिडिल स्कूल
बगड़ी सज्जनपुर ( मारवाड़ )

: नीति मे यही अन्तर है। धर्म कहता है—'लीजिए', है—'लाये जाओ।' नीति स्वार्थ पर नजर रखती र्थ की ओर सकेत करता है । जिस प्रकार माता क को चूमना, पुचकारना ही नहीं है, किन्तु बालक ारण करना है, इसी प्रकार आगे बढते जाइये और ा धर्म को हृदय मे स्थान देते चले जाइए ।

ने हिरण्यक से कहा—मैं पहले अपने बन्धन न ने साथियो के बधन कटवाने का आग्रह क्यो करता कारण यह है—

, गुणानाञ्च, साम्यमेषा मया सह ।
ाफल भाहि, कदा किं तद् भाविष्यति ॥

जाति से मैं भी कबूतर हूँ और यह सब भी कबू- से मेरे दो पख है और इन सब के भी दो-दो पख लिहाज से भी हम सब बराबर है। इतनी सब समा- भी यह मुझे राजा मानते है। अब आप ही बताइये भ इन्हे कब मिलेगा ?

मत के दो भाग बताये जाते है । क्या राजा भी दो ा है ? ऐसा कहने वाला वास्तव मे बलवान् नहीं लवान् वह है जो अपने सर्वस्व का समर्पण करके जनो की रक्षा करता है ।

ने कहा—मित्र ! जब मैं राजा हूँ तो राजा की

आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे और आप जो आज्ञा देंगे वही करेंगे।'

संकट एक शिक्षाप्रद बोध-पाठ है। राजा ने कहा—'यदि सब एक मत हो जाओ तो हम संकट से मुक्त हो सकते हैं। एक भी कबूतर अगर अलग रहा तो संकट से मुक्त नहीं हो सकेंगे। अतएव सब हिलमिल कर एक साथ उड़ो और इस जाल को साथ ही-साथ उठाओ, तो जाल से मुक्ति पाई जा सकेगी'

आज भारत में फूट है और इसी फूट के कारण पारधियों की बन पड़ी है। फूट न होती तो भारत किसी के जाल में न फँसता।

सब कबूतर मिलकर एक साथ जाल को लेकर आकाश में उड़ चले। कबूतरों को उड़ते देख पारधी उनके पीछे-पीछे दौड़ा और सोचने लगा—मैं इन कबूतरों को अपने जाल में फँसाना चाहता था पर यह तो मेरे जाल को लेकर चलते बने। इस समय यह सब एक-मत हो रहे हैं अतएव गिरते नहीं हैं, पर जब इनमें फूट पड़ेगी तब सारे नीचे आ गिरेंगे। यह सोचकर पारधी कबूतरों के पीछे-पीछे भागने लगा। पारधी को पीछा करते देख राजा ने कहा—देखो, पीछे अपना शत्रु आ रहा है। अतएव आपस में झगड़ना नहीं और यह न सोचना कि उड़ने में सब अपने बल का उपयोग कर रहे हैं तो मैं अपने बल का उपयोग क्यों करूँ? यदि आपस में लड़ोगे-झगड़ोगे या एक-दूसरे को सहकार न दोगे, तो हम सभी नीचे गिर पड़ेंगे और काल का ग्रास बन जाएँगे। राजा की यह चेतावनी सुनकर सब कबूतर मिल कर उड़ने लगे। पारधी थोड़ी दूर तो पीछे-पीछे दौड़ा, पर अन्त में वह थक गया और

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] —

[illegible]

[illegible]

[illegible] — [illegible] करना चाहिए
और [illegible] करना चाहिए
[illegible]

[illegible]

[illegible]—[illegible]

[illegible]

[illegible]—

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]—[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

रचनात्मक को [illegible] में यह [illegible] हुई। इसे यह [illegible], करना [illegible] के रचनात्मक को [illegible] किस प्रकार करनी चाहिए

सोचना, तर्क और [illegible] भिन्न-भिन्न होने के कारण रचनात्मक का [illegible] भिन्न भिन्न हो सकते हैं और [illegible] इन [illegible] में भी [illegible] और प्रकार करते हैं। भिन्न-भिन्न में भिन्न प्रकार [illegible] इस [illegible] के अनुसार [illegible] इस पर [illegible] करता है।

[illegible] कोई [illegible] है [illegible] सकता है [illegible] का उपयोग करते हैं [illegible] सकता है। [illegible] सकते हैं [illegible] और [illegible] का अनुसरण [illegible] और [illegible] आवश्यक [illegible] भी [illegible] सकते हैं

[illegible] इसके लिए कौन-सा आवश्यक [illegible] है? इस [illegible] के ऊपर में [illegible] है—यह नहीं रचनात्मक को [illegible] करने का नहीं है

करने में [illegible] उपयोग किया जाता है। पर भूल न जाना— [illegible]-सिद्धान्त और [illegible]-सिद्धान्त अलग-अलग दो वस्तुएँ हैं। [illegible] और समाज का मंगल है। लेकिन परिस्थिति [illegible] सिद्धान्त का भी उपयोग करना चाहिए।

आत्म-सिद्धान्त का सम्बन्ध आत्मा से है और बुद्धिवाद का बुद्धि के साथ। आत्मा भूत, भविष्य और वर्तमान—इन तीनों कालों में एक रस रहता है। बुद्धि नाना रूप धारिणी है। वह किसी समय कुछ और किसी समय कुछ बन जाती है। आत्मा नित्य है, बुद्धि अनित्य है। आत्मा सब का एक-सा है और बुद्धि सब की अलग-अलग प्रकार की है। धर्मी, अधर्मी, ज्ञानी, अज्ञानी, चोर, साहूकार, स्त्री-पुरुष — सभी की बुद्धि सुषुप्ति-अवस्था में लीन जैसी हो जाती है। परन्तु आत्मा उस अवस्था में भी सब का स्वस्थान पर ही रहता है। गाढ़ निद्रा की अवस्था में बुद्धि विलीन हो जाती है। इन्द्रियों की और मन की सुषुप्ति निद्रा कहलाती है। इस सुषुप्ति में बुद्धि भी शान्त हो जाती है। किन्तु आत्मा जब जागता है तो वीर पुरुष जाग कर जैसे अपने हथियार सँभालता है, उसी प्रकार वह भी अपने संस्कारों के अनुसार बुद्धि को सँभालता है। लेकिन सुषुप्ति-अवस्था में बुद्धि कहाँ गायब हो रहती है, इसका उसे पता नहीं रहता। मगर आत्मा उस समय भी जागृत बना रहता है। ऐसी अवस्था में जीववाद— आत्मा के सामने बुद्धिवाद को अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

आज सर्व-साधारण की बुद्धि बहिर्मुख हो गई है।

साथ प्रीति-सम्बन्ध स्थापित करो ऐसा सम्बन्ध—जो रग-रग में रम जाय, नस-नस में व्याप्त जाय। ऐसा न हो कि जब तक यहाँ बैठे हो तब तक तो परमात्मा को याद करो और यहाँ से बाहर पैर धरते ही उसे भूल जाओ। अगर कोई बालक, पाठशाला में 'पाँच और पाँच—दस' गिनना सीखा हो, पर पाठशाला से पिंड छूटते ही 'ग्यारह' गिनने लगे तो उसकी सच्ची शिक्षा नहीं कहलाती। इसी प्रकार यहाँ से निकलते ही अगर मस्तक में से परमात्मा के नाम को भी निकाल फेंको तो तुम्हारा उपदेश-श्रवण भी—वास्तविक—सफल नहीं कहला सकता। अतएव जब यहाँ से बाहर चले जाओ तब भी परमात्मा को भूलो नहीं। वरन् परमात्मा की प्रार्थना द्वारा, संसार में अवश्यंभावी जन्म-जरा-मरण आदि भयों से मुक्त होकर अमर बनने का प्रयत्न करो। जीवन के इस प्रधान लक्ष्य को भूल न जाना।

कुछ लोगों को यह भ्रम है कि गृहस्थ-अवस्था में रहते हुए भावना अनन्तमय नहीं बन सकती। अतएव वे कहते हैं—हम क्या करें—भावना को अनन्तमय बनायें या संसार-व्यवहार का निर्वाह करें? वास्तव में, गृहस्थावस्था साधक दशा में बाधक है किन्तु जो गृहस्थ अनन्त-भावना का अभ्यासी बन जाता है, उसके लिए गृहस्थ-अवस्था सर्वथा बाधक नहीं है। अतएव मैं सिर्फ यही कहता हूँ कि परमात्मा की प्रार्थना द्वारा भावना को अनन्तमय बनाने का प्रयास करो। प्रार्थना के विषय में तुम बहुत दिनों से सुन रहे हो। उसका कुछ असर तुम्हारे हृदय पर पड़ा है या नहीं? जब द्रव्य वस्तु—स्थूल—का प्रभाव भी अवश्य पड़ता है तो भाव का प्रभाव पड़े बिना क्या रह सकता है? अगर तुम उपदेश को अपने

नरा मुख कितना प्रशान्त है ! कितना आनन्दमय है ! कैसी मधुपन आभा उनके मुख पर शोभा कर रही है ! उनके नेत्र दो तो मालूम होगा, उनमें से कैसी अद्भुत ज्योति जग रही ! कैसा उल्लास उनमें से फूटा पड़ता है ! उनकी किसी भी चेष्टा का अवलोकन करो, विदित होगा कि उसमें जैसे अलौकिक व्यतता, अपार गम्भीरता और निस्पृहता भरी हुई है !

दुनिया के लोग जिसे पर्वत के समान दुःख अनुभव करते हैं, उस प्रकार दुःख के माथे पर आ पड़ने पर भी, जिस दिव्य भावना का परिचय पाकर आप लोग प्रसन्न एवं प्रमोदमय बने रहते हैं, मानो चिउँटी भी शरीर पर नहीं रेंग रही है, उस भव्य भावना को खोजो। उसमें एक अद्भुत सामर्थ्य है। वह भावना एक ऐसा अनोखा यन्त्र है, जिसमें घोर से घोर दुःख भी सुख का रूप धारण कर लेता है। वह वेदना की विकृति को निकाल फैंकती है। इस भावना से भूषित भव्य पुरुष कैसा होता है? यह स्पष्ट करने के लिए एक प्राचीन ग्रन्थ में पाई हुई कथा उपयोगी होगी। यह कथा सुन कर तुम समझ सकोगे कि अमृतमयी भावना वाला पुरुष किस प्रकार स्व-पर का भेद भूल जाता है और विपदा की वेला कितना अधिक निर्भय और प्रसन्न रह सकता है।

## मघा का वृत्तान्त *

मगध देश के एक गाँव में एक किसान के घर पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का जन्म मघा नक्षत्र में हुआ था, अतएव उसका

* बौद्ध जातक कथा।